IJCRT.ORG ISSN : 2320-2882

INTERNATIONAL JOURNAL OF CREATIVE RESEARCH THOUGHTS (IJCRT)

An International Open Access, Peer-reviewed, Refereed Journal

# भारतीय परंपरा में आश्रम व्यवस्था की वर्तमान परिदृश्य में प्रासंगिकता

**रामधन चौधरी**

शोधार्थी (दर्शनशास्त्र विभाग)

सम्राट पृथ्वीराज चौहान राजकीय महाविद्यालय,

महर्षि दयानन्द सरस्वती विश्वविद्यालय, अजमेर (राजस्थान)

## शोध-सार (Abstract)

भारतीय चिन्तन-परम्परा में "आश्रम व्यवस्था" मात्र एक सामाजिक संस्था नहीं, अपितु मानव-जीवन को समग्रता में संगठित करने वाली एक दार्शनिक दृष्टि है। यह व्यवस्था व्यक्ति के आयुष्य को ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ एवं संन्यास — इन चार सोपानों में विभक्त कर धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष रूपी पुरुषार्थ-चतुष्टय की क्रमिक सिद्धि का मार्ग प्रशस्त करती है। प्रस्तुत शोध-पत्र में श्रुति, स्मृति, धर्मसूत्र एवं भगवद्गीता जैसे मूल स्रोतों के आधार पर आश्रम व्यवस्था के स्वरूप, दार्शनिक अधिष्ठान तथा ऐतिहासिक विकास का विश्लेषण किया गया है। तदुपरान्त इक्कीसवीं शताब्दी के भारतीय समाज की प्रमुख चुनौतियों — शैक्षिक तनाव, पारिवारिक विघटन, वृद्धजनों की उपेक्षा, उपभोक्तावादी अतिवाद, पारिस्थितिक संकट एवं मानसिक अस्वस्थता — के सन्दर्भ में इस व्यवस्था की प्रासंगिकता का परीक्षण किया गया है। शोध का निष्कर्ष यह है कि आश्रम व्यवस्था की प्रासंगिकता उसके *संस्थागत पुनरुद्धार* में नहीं, अपितु उसके *मूल्य-सिद्धान्तों की पुनर्व्याख्या* में निहित है।

**बीज शब्द:** आश्रम व्यवस्था, चतुराश्रम, ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ, संन्यास, पुरुषार्थ-चतुष्टय, ऋणत्रय, जीवन-चक्र, समरस समाज, प्रवृत्ति-निवृत्ति।

## 1. भूमिका

मानव-सभ्यता के समक्ष सदैव एक मूलभूत प्रश्न रहा है — जीवन के परस्पर-विरोधी प्रतीत होने वाले प्रयोजनों में सामंजस्य कैसे स्थापित किया जाए? एक ओर भौतिक समृद्धि, सन्तति एवं सामाजिक दायित्व की माँग है, दूसरी ओर आत्म-साक्षात्कार, वैराग्य एवं मुक्ति की आकांक्षा। पाश्चात्य परम्परा में यह द्वन्द्व प्रायः "या तो यह, या तो वह" के रूप में हल किया गया — या तो संसार, या मठ। भारतीय मनीषा ने इस द्वन्द्व का समाधान *अस्वीकार* से नहीं, अपितु *क्रम* से खोजा। आश्रम व्यवस्था इसी क्रमिक समाधान का नाम है।[1]

आज जब भारतीय समाज तीव्र नगरीकरण, आर्थिक उदारीकरण एवं तकनीकी रूपान्तरण के दौर से गुजर रहा है, तब यह प्रश्न स्वाभाविक रूप से उठता है कि क्या दो सहस्राब्दियों से भी अधिक प्राचीन यह जीवन-योजना आज भी कोई अर्थ रखती है? क्या वानप्रस्थ की अवधारणा उस समाज में सार्थक हो सकती है जहाँ सेवानिवृत्ति की आयु साठ वर्ष है

[1] आश्रम व्यवस्था के इस समन्वयात्मक स्वरूप के सामान्य विवेचन हेतु द्रष्टव्य — एस. राधाकृष्णन, The Hindu View of Life, George Allen & Unwin, London, 1927.

और जीवन-प्रत्याशा सत्तर के पार? क्या ब्रह्मचर्याश्रम की शिक्षा-दृष्टि उस युग में प्रासंगिक है जहाँ शिक्षा रोजगार-प्राप्ति का साधन-मात्र बन गई है?

प्रस्तुत शोध-पत्र इन्हीं प्रश्नों की मीमांसा करता है। यहाँ यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि इस अध्ययन का अभिप्राय किसी अतीत-गौरव के भावुक पुनरुत्थान से नहीं, अपितु एक शास्त्रीय प्रतिमान के समकालीन उपयोगिता-मूल्य के तटस्थ मूल्यांकन से है।

## 3. 'आश्रम' पद का अर्थ-विमर्श

"आश्रम" शब्द संस्कृत की **श्रमु (तपसि खेदे च)** धातु से "आङ्" उपसर्गपूर्वक "घञ्" प्रत्यय के योग से निष्पन्न होता है। व्युत्पत्ति के अनुसार — *"आश्राम्यन्ति अस्मिन् इति आश्रमः"* — अर्थात् जिसमें (साधक) श्रम करता है, वह आश्रम है।[2]

इस व्युत्पत्ति से तीन अर्थ-स्तर उभरते हैं:

**(क) श्रम-स्थल:** आश्रम वह क्षेत्र है जहाँ व्यक्ति नियत तप एवं पुरुषार्थ करता है। ध्यातव्य है कि यहाँ "श्रम" का अर्थ मात्र शारीरिक परिश्रम नहीं, अपितु *नियमबद्ध साधना* है।

**(ख) विश्रान्ति-स्थल:** दूसरे अर्थ में आश्रम विश्राम का स्थान भी है — जहाँ पथिक ठहरकर आगे की यात्रा के लिए शक्ति संचित करता है। यह अर्थ अत्यन्त सूचक है: प्रत्येक आश्रम जीवन-यात्रा का *पड़ाव* है, गन्तव्य नहीं।

**(ग) जीवन-सोपान:** तृतीय एवं प्रस्तुत सन्दर्भ में सर्वाधिक प्रासंगिक अर्थ है — आयुष्य का वह विभाजित चरण जिसमें विशिष्ट कर्तव्यों का विधान है।

अतः "आश्रम" की संकल्पना में **श्रम, विश्राम एवं क्रमिक प्रगति** — तीनों तत्त्व अन्तर्निहित हैं। यह द्रष्टव्य है कि पाश्चात्य "stage of life" शब्द इस बहुस्तरीय अर्थ को पूर्णतः वहन नहीं करता, क्योंकि उसमें साधना और लक्ष्योन्मुखता का भाव अनुपस्थित है।

## 4. आश्रम व्यवस्था का शास्त्रीय आधार एवं ऐतिहासिक विकास

### 4.1 वैदिक-औपनिषदिक बीज

आश्रम व्यवस्था का सुव्यवस्थित सूत्रीकरण यद्यपि धर्मसूत्र-काल की देन है, तथापि इसके बीज वैदिक साहित्य में विद्यमान हैं। ऋग्वेद के **केशी-सूक्त** में "मुनि" और "वातरशना" का उल्लेख मिलता है, जो गृहस्थ-जीवन से भिन्न एक तपोमय जीवन-पद्धति का संकेत करता है।[3] इससे स्पष्ट है कि वैदिक समाज में संन्यासोन्मुख जीवन-शैली की स्वीकृति प्रारम्भ से ही थी।

**छान्दोग्य उपनिषद्** में तीन धर्म-स्कन्धों का उल्लेख आश्रम-विभाजन की प्रारम्भिक झलक देता है —

*"त्रयो धर्मस्कन्धाः। यज्ञोऽध्ययनं दानमिति प्रथमः। तप एव द्वितीयः। ब्रह्मचार्याचार्यकुलवासी तृतीयः।"*[4]

यहाँ यज्ञ-अध्ययन-दान (गृहस्थ), तप (वानप्रस्थ/तापस) एवं आचार्यकुलवासी ब्रह्मचारी — ये तीन जीवन-प्रणालियाँ स्पष्टतः निर्दिष्ट हैं, यद्यपि चतुर्थ (संन्यास) का उल्लेख यहाँ नहीं है।

**तैत्तिरीय उपनिषद्** का प्रसिद्ध दीक्षान्त-उपदेश ब्रह्मचर्य से गृहस्थ में जाने का माध्यम है —

*"सत्यं वद। धर्मं चर। स्वाध्यायान्मा प्रमदः। आचार्याय प्रियं धनमाहृत्य प्रजातन्तुं मा व्यवच्छेत्सीः।"*[5]

आचार्य विद्यार्थी को केवल सत्य और धर्म का ही उपदेश नहीं देते, अपितु *प्रजा-तन्तु न तोड़ने* का आदेश भी देते हैं — अर्थात् गृहस्थाश्रम में प्रवेश शिक्षा की परिणति है, उसका विरोध नहीं।

---

[2] 'आश्रम' पद की व्युत्पत्ति एवं धर्मशास्त्रीय अर्थ-विमर्श के विस्तृत विवेचन हेतु द्रष्टव्य — P. V. Kane, History of Dharmaśāstra, Vol. II, Part I, Bhandarkar Oriental Research Institute, Poona, 1941, 'आश्रम' अध्याय।

[3] ऋग्वेद, 10.136 (केशी-सूक्त)।

[4] छान्दोग्य उपनिषद्, 2.23.1.

[5] तैत्तिरीय उपनिषद्, शिक्षावल्ली, 1.11.1.

चारों आश्रमों का क्रमबद्ध निर्देश **जाबालोपनिषद्** में सर्वाधिक स्पष्टता से प्राप्त होता है —

*"ब्रह्मचर्यं समाप्य गृही भवेत्। गृही भूत्वा वनी भवेत्। वनी भूत्वा प्रव्रजेत्। यदि वेतरथा ब्रह्मचर्यादेव प्रव्रजेद् गृहाद्वा वनाद्वा।"*[6]

इस उद्धरण का उत्तरार्ध विशेष महत्त्वपूर्ण है — *"यदि वा इतरथा"* (अथवा अन्यथा भी) — जिससे यह ध्वनित होता है कि क्रम अनिवार्य नहीं; प्रबल वैराग्य होने पर ब्रह्मचर्य से सीधे संन्यास भी सम्भव है। यह लचीलापन आश्रम व्यवस्था की एक अत्यन्त उल्लेखनीय विशेषता है, जिसे प्रायः विस्मृत कर दिया जाता है।

### 4.2 धर्मसूत्र-काल: विकल्प-पक्ष

आधुनिक शोध ने यह सिद्ध किया है कि आश्रम व्यवस्था का प्रारम्भिक स्वरूप *क्रमिक सोपान* का नहीं, अपितु *विकल्प* (alternatives) का था। पैट्रिक ऑलिवेल के विस्तृत अध्ययन के अनुसार, आपस्तम्ब, गौतम, बौधायन एवं वसिष्ठ जैसे धर्मसूत्रकारों के समक्ष चारों आश्रम वेदाध्ययन-सम्पन्न युवक के लिए *आजीवन विकल्प* के रूप में उपस्थित थे — वह इनमें से किसी एक का वरण कर सकता था।[7] यही "मूल आश्रम-प्रणाली" है।

आपस्तम्ब धर्मसूत्र में चार आश्रमों का उल्लेख गार्हस्थ्य, आचार्यकुल, मौन (मुनित्व) एवं वानप्रस्थ के रूप में मिलता है।[8] गौतम धर्मसूत्र में चारों आश्रमों की गणना के पश्चात् आचार्यों का यह मत भी उद्धृत है कि वस्तुतः **एक ही आश्रम है — गार्हस्थ्य**, क्योंकि शेष तीनों सन्तानोत्पत्ति नहीं करते और इस प्रकार समाज की निरन्तरता में योगदान नहीं देते।[9] यह विवाद स्वयं में यह प्रमाणित करता है कि प्राचीन आचार्यों में आश्रम-व्यवस्था के स्वरूप को लेकर सजीव शास्त्रार्थ चल रहा था।

### 4.3 स्मृति-काल: समुच्चय-पक्ष

कालान्तर में — विशेषतः मनुस्मृति के काल में — यह विकल्प-प्रणाली *क्रमिक प्रणाली* में रूपान्तरित हो गई। मनु आयुष्य के चतुर्थांश-विभाजन का स्पष्ट विधान करते हैं —

*"चतुर्थमायुषो भागमुषित्वाद्यं गुरौ द्विजः।*
*द्वितीयमायुषो भागं कृतदारो गृहे वसेत्॥"*[10]

तथा चारों आश्रमों की गणना —

*"ब्रह्मचारी गृहस्थश्च वानप्रस्थो यतिस्तथा।*
*एते गृहस्थप्रभवाश्चत्वारः पृथगाश्रमाः॥"*[11]

**यह ऐतिहासिक विकास-क्रम प्रस्तुत शोध के लिए अत्यन्त निर्णायक है।** यदि आश्रम व्यवस्था स्वयं अपने इतिहास में परिवर्तित होती रही है — विकल्प से क्रम की ओर — तो आज उसकी पुनर्व्याख्या करना परम्परा का उल्लंघन नहीं, अपितु परम्परा के ही आन्तरिक स्वभाव का अनुसरण है।

---

[6]जाबालोपनिषद्, 4.

[7]Patrick Olivelle, The Āśrama System: The History and Hermeneutics of a Religious Institution, Oxford University Press, New York, 1993. ऑलिवेल ने "मूल प्रणाली" (original system) एवं "शास्त्रीय प्रणाली" (classical system) का भेद स्थापित किया है।

[8]आपस्तम्ब धर्मसूत्र, 2.9.21.1; तुलनीय — Kane, पूर्वोक्त, "आश्रम" अध्याय।

[9]गौतम धर्मसूत्र, 3.1–3.3 एवं 3.36; व्याख्या हेतु द्रष्टव्य — Olivelle, पूर्वोक्त।

[10]मनुस्मृति, 4.1.

[11]वही, 6.87.

## 5. चतुराश्रम का स्वरूप एवं प्रयोजन

### 5.1 ब्रह्मचर्याश्रम — निर्माण का काल

उपनयन-संस्कार के साथ ब्रह्मचर्याश्रम का आरम्भ होता है। मनु के अनुसार ब्राह्मण-बालक का उपनयन गर्भ से आठवें वर्ष में होना चाहिए।[12] अध्ययन-काल की अवधि विषय की गहनता के अनुसार छत्तीस, अठारह या नौ वर्ष अथवा वेदग्रहण-पर्यन्त निर्धारित है।[13]

इस आश्रम का प्रयोजन केवल सूचना-संग्रह नहीं, अपितु **चरित्र-निर्माण, इन्द्रिय-संयम एवं शक्ति-संचय** है। "ब्रह्मचर्य" शब्द का ही अर्थ है — *ब्रह्मणि चर्यते इति* — ब्रह्म (ज्ञान/परम सत्य) में विचरण करना। संयम यहाँ दमन नहीं, अपितु ऊर्जा का उच्चतर लक्ष्य की ओर नियोजन है।

### 5.2 गृहस्थाश्रम — आधार-स्तम्भ

समस्त स्मृति-परम्परा गृहस्थाश्रम को केन्द्रीय एवं श्रेष्ठ मानती है। मनु का सुप्रसिद्ध वचन है —

*"यथा वायुं समाश्रित्य वर्तन्ते सर्वजन्तवः।*
*तथा गृहस्थमाश्रित्य वर्तन्ते सर्व आश्रमाः॥"*[14]

तथा —

*"सर्वेषामपि चैतेषां वेदस्मृतिविधानतः।*
*गृहस्थ उच्यते श्रेष्ठः स त्रीनेतान् बिभर्ति हि॥"*[15]

गृहस्थ का दायित्व **पञ्चमहायज्ञ** के रूप में संहिताबद्ध है —

*"अध्यापनं ब्रह्मयज्ञः पितृयज्ञस्तु तर्पणम्।*
*होमो दैवो बलिर्भौतो नृयज्ञोऽतिथिपूजनम्॥"*[16]

यह श्लोक आश्रम व्यवस्था की सामाजिक-पारिस्थितिक दृष्टि का सारतत्त्व है। **नृयज्ञ** (अतिथि-सत्कार) मनुष्य-मात्र के प्रति दायित्व है; **भूतयज्ञ** (बलि) समस्त प्राणि-जगत् के प्रति। मनु "पञ्चसूना" की अवधारणा में यह भी स्वीकार करते हैं कि गृहस्थ का दैनिक जीवन-व्यापार ही अनेक सूक्ष्म जीवों की हिंसा का कारण बनता है, और इस अनिवार्य हिंसा के प्रायश्चित्तस्वरूप ही पञ्चमहायज्ञ का विधान है।[17] यह एक असाधारण नैतिक अन्तर्दृष्टि है — *मनुष्य का अस्तित्व ही ऋणग्रस्त है, अतः उसका जीवन प्रतिदान का जीवन होना चाहिए।*

### 5.3 वानप्रस्थाश्रम — संक्रमण का काल

मनु वानप्रस्थ के प्रवेश का सूचक अत्यन्त काव्यात्मक ढंग से देते हैं —

*"गृहस्थस्तु यदा पश्येद् वलीपलितमात्मनः।*
*अपत्यस्यैव चापत्यं तदारण्यं समाश्रयेत्॥"*[18]

अर्थात् जब शरीर पर झुर्रियाँ और केशों में श्वेतता दिखाई दे, तथा सन्तान की भी सन्तान हो जाए, तब वन का आश्रय ले। यहाँ "वन-गमन" का शाब्दिक अर्थ ही ग्रहण करना अनावश्यक है; इसका सारभूत अर्थ है — **सक्रिय अधिकार से क्रमिक निवृत्ति**।

वानप्रस्थी का चरित्र निष्क्रिय नहीं है। मनु उसका जो लक्षण देते हैं, वह उल्लेखनीय है —

---

[12] वही, 2.36.
[13] वही, 3.1.
[14] वही, 3.77.
[15] वही, 6.89.
[16] वही, 3.70.
[17] वही, 3.68 (पञ्चसूना-प्रकरण)।
[18] वही, 6.2.

*"स्वाध्याये नित्ययुक्तः स्याद् दान्तो मैत्रः समाहितः।*
*दाता नित्यमनादाता सर्वभूतानुकम्पकः॥"*[19]

वह **दाता** है, **अनादाता** (न लेने वाला) है, **मैत्र** है और **सर्वभूतानुकम्पक** है। अर्थात् वानप्रस्थ "लेने" से "देने" की ओर संक्रमण का नाम है — यह अवधारणा वृद्धावस्था की आधुनिक समस्या के सन्दर्भ में असाधारण रूप से प्रासंगिक है, जिसकी चर्चा आगे की गई है।

### 5.4 संन्यासाश्रम — मुक्ति का काल

*"वनेषु च विहृत्यैवं तृतीयं भागमायुषः।*
*चतुर्थमायुषो भागं त्यक्त्वा सङ्गान् परिव्रजेत्॥"*[20]

संन्यासी का आदर्श मनु ने अत्यन्त गम्भीर शब्दों में व्यक्त किया है —

*"नाभिनन्देत मरणं नाभिनन्देत जीवितम्।*
*कालमेव प्रतीक्षेत निर्देशं भृतको यथा॥"*[21]

तथा उसका आचार-सूत्र —

*"दृष्टिपूतं न्यसेत् पादं वस्त्रपूतं जलं पिबेत्।*
*सत्यपूतां वदेद् वाचं मनःपूतं समाचरेत्॥"*[22]

दृष्टि से पवित्र करके पैर रखना, वस्त्र से छानकर जल पीना, सत्य से पवित्र वाणी बोलना — यह अहिंसा एवं सजग जीवन की चरम अभिव्यक्ति है।

महत्त्वपूर्ण है कि मनु धर्म के दश लक्षण गिनाते समय किसी आश्रम-विशेष का उल्लेख नहीं करते —

*"धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।*
*धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम्॥"*[23]

अर्थात् **मूल नैतिक मूल्य सर्वाश्रम-साधारण हैं**; आश्रम केवल उनके अभ्यास का सन्दर्भ बदलते हैं, स्वयं मूल्य नहीं।

## 6. आश्रम व्यवस्था का दार्शनिक अधिष्ठान

### 6.1 पुरुषार्थ-चतुष्टय से सामंजस्य

आश्रम व्यवस्था का सबसे सुसंगत दार्शनिक आधार पुरुषार्थ-सिद्धान्त है। ब्रह्मचर्य **धर्म** की नींव रखता है; गृहस्थ **अर्थ** एवं **काम** का धर्मानुशासित उपभोग करता है; वानप्रस्थ इनसे क्रमिक विरति साधता है; और संन्यास **मोक्ष** पर एकाग्र होता है। यह ध्यातव्य है कि भारतीय परम्परा में अर्थ और काम का निषेध नहीं, अपितु उनका **धर्म-नियन्त्रित संयोजन** अभीष्ट है। गीता का स्पष्ट वचन है — *"धर्माविरुद्धो भूतेषु कामोऽस्मि"*।[24]

### 6.2 ऋणत्रय सिद्धान्त

आश्रम व्यवस्था का नैतिक इंजन "ऋणत्रय" की अवधारणा है। तैत्तिरीय संहिता के अनुसार —

*"जायमानो वै ब्राह्मणस्त्रिभिर्ऋणवा जायते— ब्रह्मचर्येण ऋषिभ्यः, यज्ञेन देवेभ्यः, प्रजया पितृभ्यः।"*[25]

---

[19] वही, 6.8.
[20] वही, 6.33.
[21] वही, 6.45.
[22] वही, 6.46.
[23] वही, 6.92.
[24] श्रीमद्भगवद्गीता, 7.11.
[25] तैत्तिरीय संहिता, 6.3.10.5; तुलनीय — शतपथ ब्राह्मण, 1.7.2.1–5.

मनुष्य जन्म से ही तीन ऋणों से युक्त है — **ऋषि-ऋण** (ज्ञान-परम्परा का), **देव-ऋण** (प्राकृतिक शक्तियों का) एवं **पितृ-ऋण** (वंश-परम्परा का)। इन ऋणों का शोधन क्रमशः ब्रह्मचर्य, यज्ञ एवं सन्तानोत्पत्ति से होता है। यहाँ दार्शनिक दृष्टि से जो अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है, वह यह है कि **मुक्ति की पात्रता दायित्व-निर्वहण के बाद ही आती है**। यह व्यक्तिवादी मोक्ष-कामना पर सामाजिक उत्तरदायित्व का अंकुश है — और यही आश्रम व्यवस्था को पलायनवाद से बचाता है।

### 6.3 प्रवृत्ति-निवृत्ति समन्वय

भारतीय दर्शन की दो प्रमुख धाराएँ — प्रवृत्ति-मार्ग (कर्म, समाज, सृजन) एवं निवृत्ति-मार्ग (त्याग, वैराग्य, मोक्ष) — प्रायः परस्पर-विरोधी मानी जाती हैं। आश्रम व्यवस्था की मौलिक उपलब्धि यह है कि वह इन दोनों को **कालक्रम में विन्यस्त कर** द्वन्द्व को समाप्त कर देती है। गीता इसी समन्वय की चरम अभिव्यक्ति है, जहाँ त्याग कर्म के *परित्याग* में नहीं, अपितु कर्मफल की *आसक्ति के परित्याग* में परिभाषित होता है —

*"कर्मणैव हि संसिद्धिमास्थिता जनकादयः।*
*लोकसंग्रहमेवापि सम्पश्यन् कर्तुमर्हसि॥"*[26]

## 7. वर्तमान परिदृश्य: संकट के आयाम

आश्रम व्यवस्था की प्रासंगिकता का मूल्यांकन तभी सार्थक है जब समकालीन यथार्थ का यथातथ्य चित्र सामने हो। निम्नलिखित प्रवृत्तियाँ विशेष उल्लेखनीय हैं:

**(क) जनसांख्यिकीय संक्रमण -** संयुक्त राष्ट्र जनसंख्या कोष (UNFPA) की *भारत वृद्धावस्था रिपोर्ट 2023* के अनुसार भारत में 60 वर्ष से अधिक आयु के व्यक्तियों का अनुपात 2022 के 10.5 प्रतिशत से बढ़कर 2050 तक लगभग 20.8 प्रतिशत हो जाएगा; संख्यात्मक दृष्टि से यह 14.9 करोड़ से बढ़कर लगभग 34.7 करोड़ होगा। रिपोर्ट यह भी संकेत करती है कि 2046 तक भारत में वृद्धजनों की संख्या बच्चों की संख्या से अधिक हो जाएगी, तथा 80 वर्ष से ऊपर की आयु-वर्ग में 2022–2050 के मध्य लगभग 279 प्रतिशत की वृद्धि होगी।[27]

**(ख) पारिवारिक संरचना का रूपान्तरण -** राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण (NFHS-5, 2019–21) के अनुसार एकल परिवारों का अनुपात लगभग 58.2 प्रतिशत तक पहुँच गया है तथा औसत पारिवारिक आकार घटकर 4.4 सदस्य रह गया है।[28] यहाँ एक शोध-सम्मत सावधानी आवश्यक है: संयुक्त परिवार का *विघटन* नहीं, अपितु *रूपान्तरण* हुआ है — अनेक परिवार संरचनात्मक रूप से एकल होते हुए भी कार्यात्मक रूप से संयुक्त बने हुए हैं।[29] अतः इस विषय पर अतिसरलीकृत विलाप शोध-दृष्टि से अनुचित होगा।

**(ग) शैक्षिक तनाव -** राष्ट्रीय अपराध रिकॉर्ड ब्यूरो (NCRB) के प्रतिवेदनों के अनुसार विद्यार्थी-वर्ग में आत्मघात की संख्या 2014 के लगभग 8,000 से बढ़कर 2024 में 14,488 तक पहुँच गई; परीक्षा में असफलता एवं पारिवारिक समस्याएँ प्रमुख कारणों में गिनाई गई हैं।[30] यह आँकड़ा अपने-आप में शिक्षा-व्यवस्था की मूल्य-दृष्टि पर गम्भीर प्रश्न खड़ा करता है।

**(घ) उपभोक्तावाद एवं पारिस्थितिक दबाव -** असीमित उपभोग को प्रगति का पर्याय मानने वाली आर्थिक दृष्टि ने संसाधन-दोहन को उस स्तर पर पहुँचा दिया है जहाँ पारिस्थितिक सन्तुलन संकटग्रस्त है।

**(ङ) अर्थ-संकट -** भौतिक समृद्धि के साथ-साथ जीवन के प्रयोजन-सम्बन्धी शून्यता का अनुभव — जिसे मनोविज्ञान "existential vacuum" कहता है — बढ़ता जा रहा है।

---

[26]श्रीमद्भगवद्गीता, 3.20.

[27]India Ageing Report 2023: Caring for Our Elders — Institutional Responses, UNFPA एवं International Institute for Population Sciences (IIPS), नई दिल्ली, 2023.

[28]राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण (NFHS-5), 2019–21, International Institute for Population Sciences, मुम्बई, 2022 पर आधारित आँकड़े।

[29]संयुक्त परिवार के "विघटन" के स्थान पर "रूपान्तरण" की व्याख्या हेतु जनगणना एवं NFHS आँकड़ों पर आधारित समाजशास्त्रीय विश्लेषण द्रष्टव्य; 2001–2011 की जनगणना में एकल परिवारों के अनुपात में अपेक्षित वृद्धि नहीं पाई गई।

[30]Accidental Deaths and Suicides in India (ADSI), राष्ट्रीय अपराध रिकॉर्ड ब्यूरो, गृह मन्त्रालय, भारत सरकार — विभिन्न वर्ष (2014–2024)।

## 8. समकालीन प्रासंगिकता: विश्लेषण

### 8.1 शिक्षा-दर्शन के क्षेत्र में

ब्रह्मचर्याश्रम की केन्द्रीय शिक्षा यह है कि **शिक्षा का उद्देश्य आजीविका-अर्जन नहीं, व्यक्तित्व-निर्माण है**; आजीविका उसका सहज परिणाम है। आज की शिक्षा-प्रणाली इस क्रम को उलट देती है — रोजगार साध्य बन जाता है और व्यक्तित्व उपेक्षित। तैत्तिरीय उपनिषद् का दीक्षान्त-उपदेश (सत्यं वद, धर्मं चर) यह स्मरण कराता है कि अध्ययन की परिणति *आचरण* में होनी चाहिए, प्रमाणपत्र में नहीं।

ब्रह्मचर्य की दूसरी शिक्षा **संयम की सामर्थ्य** है। संयम को दमन नहीं, अपितु *ऊर्जा-प्रबन्धन* की कला के रूप में देखा जाए तो वह उस पीढ़ी के लिए अत्यन्त उपयोगी है जो निरन्तर डिजिटल उद्दीपनों में विभाजित ध्यान के साथ जी रही है। गीता का सन्तुलन-सूत्र यहाँ प्रत्यक्षतः प्रासंगिक है —

*"युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु।*
*युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा॥"*[31]

आहार, विहार, कर्म, निद्रा एवं जागरण — सबमें "युक्तता" (उपयुक्त मात्रा) ही दुःख का नाश करने वाला योग है। यह वस्तुतः एक समग्र स्वास्थ्य-दर्शन है।

### 8.2 गृहस्थाश्रम एवं सामाजिक उत्तरदायित्व

गृहस्थाश्रम की समकालीन प्रासंगिकता का सर्वप्रमुख बिन्दु यह है कि **वह भौतिक उपार्जन को नैतिक दायित्व से जोड़ता है**। पञ्चमहायज्ञ की अवधारणा को आधुनिक शब्दावली में इस प्रकार पढ़ा जा सकता है:

ब्रह्मयज्ञ - ज्ञान-सृजन एवं शिक्षण; ज्ञान का निःशुल्क वितरण।

पितृयज्ञ - वृद्धजन-सेवा एवं पारिवारिक दायित्व।

देवयज्ञ - प्राकृतिक शक्तियों के प्रति कृतज्ञता-बोध।

भूतयज्ञ - पर्यावरण एवं प्राणि-कल्याण।

नृयज्ञ - सामाजिक सेवा, अतिथि-सत्कार, परोपकार।

यह दर्शाती है कि गृहस्थ की संकल्पना में **व्यक्ति, परिवार, समाज, प्रकृति एवं ज्ञान-परम्परा** — पाँचों वृत्त एक साथ सम्मिलित हैं। आधुनिक "सामाजिक उत्तरदायित्व" की धारणा से यह कहीं अधिक व्यापक है, क्योंकि यह *अनुष्ठान* के रूप में जीवन में अन्तर्भूत है, न कि पृथक् परोपकार-गतिविधि के रूप में।

### 8.3 वानप्रस्थ: वृद्धजन एवं अन्तर-पीढ़ी समरसता

**यह आश्रम व्यवस्था का सर्वाधिक प्रासंगिक किन्तु सर्वाधिक उपेक्षित अंग है।** पूर्वोक्त जनसांख्यिकीय आँकड़े स्पष्ट करते हैं कि भारत तीव्रता से वृद्ध-होते समाज में परिवर्तित हो रहा है। आधुनिक सामाजिक व्यवस्था वृद्धावस्था को मुख्यतः **"निर्भरता"** की श्रेणी में देखती है — पेंशन, चिकित्सा-व्यय एवं देखभाल की समस्या के रूप में।

वानप्रस्थ की अवधारणा इस दृष्टि को मूलतः उलट देती है। यहाँ वृद्धावस्था **निर्भरता नहीं, अपितु प्रतिदान का काल** है। पूर्वोद्धृत मनुवचन के अनुसार वानप्रस्थी *दाता* है, *अनादाता* है, *सर्वभूतानुकम्पक* है। अर्थात् जीवन का उत्तरार्ध वह चरण है जब व्यक्ति संचित अनुभव, ज्ञान एवं साधन समाज को लौटाता है।

[31] श्रीमद्भगवद्गीता, 6.17.

यह दृष्टि तीन कारणों से आज मूल्यवान है:

1. **मनोवैज्ञानिक:** यह वृद्धजन को उद्देश्य-बोध प्रदान करती है, जो सेवानिवृत्ति-पश्चात् की अवसादग्रस्तता का प्रमुख प्रतिकार है।

2. **सामाजिक:** यह अन्तर-पीढ़ी संघर्ष को कम करती है, क्योंकि सक्रिय अधिकार का हस्तान्तरण *संघर्ष* से नहीं, *सुनियोजित क्रम* से होता है। संयुक्त राष्ट्र जनसंख्या कोष की रिपोर्ट भी बहु-पीढ़ीय परिवारों में वृद्धजनों की बेहतर देखभाल को रेखांकित करती है।[32]

3. **आर्थिक:** अनुभवी वरिष्ठ नागरिकों की सामाजिक सहभागिता "सक्रिय वृद्धावस्था" की उस अवधारणा के अनुरूप है जिसे विश्व स्वास्थ्य संगठन नीतिगत रूप से प्रोत्साहित करता है।[33]

यहाँ यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि वानप्रस्थ का समकालीन रूप *वन-गमन* नहीं होगा। उसका आधुनिक अनुवाद है — **स्वैच्छिक सत्ता-हस्तान्तरण, परामर्शदाता की भूमिका, सामाजिक स्वयंसेवा, ज्ञान-संचरण एवं उपभोग में स्वैच्छिक संयम।**

### 8.4 संन्यास: उपभोक्तावाद का प्रतिकार एवं पर्यावरण-दृष्टि

संन्यास का सन्देश आधुनिक सन्दर्भ में "सर्वस्व-त्याग" नहीं, अपितु **"पर्याप्तता का बोध"** है। ईशोपनिषद् का प्रथम मन्त्र इस दृष्टि का सर्वोत्कृष्ट सूत्रीकरण है —

*"ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्।*
*तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्यस्विद्धनम्॥"*[34]

"त्यक्तेन भुञ्जीथा" — त्यागपूर्वक भोग करो — यह सूत्र आधुनिक "सतत विकास" की अवधारणा का दार्शनिक पूर्ववर्ती है। और "मा गृधः" (लोभ मत करो) उपभोक्तावाद की मूल प्रेरणा पर सीधा प्रहार है। संन्यासी का "दृष्टिपूतं न्यसेत् पादम्" वाला आचार-सूत्र[35] वस्तुतः पारिस्थितिक सजगता का प्राचीनतम पाठ है।

### 8.5 समग्र स्वास्थ्य एवं समरस समाज

आश्रम व्यवस्था स्वास्थ्य को केवल रोगाभाव नहीं मानती। ब्रह्मचर्य शारीरिक-मानसिक शक्ति देता है, गृहस्थ सामाजिक-भावनात्मक पूर्ति, वानप्रस्थ अर्थ-बोध, और संन्यास आध्यात्मिक शान्ति। यह विश्व स्वास्थ्य संगठन की उस परिभाषा से अत्यन्त निकट है जिसमें स्वास्थ्य को शारीरिक, मानसिक एवं सामाजिक कल्याण की सम्पूर्ण अवस्था कहा गया है।

समरसता की दृष्टि से आश्रम व्यवस्था का योगदान यह है कि वह **प्रत्येक आयु-वर्ग को समाज में सुनिश्चित एवं सम्मानजनक स्थान देती है**। कोई भी चरण "अनुपयोगी" नहीं है। वैदिक समरसता-मन्त्र इसी भाव की उद्घोषणा करता है —

*"संगच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम्।"*[36]

एवं महोपनिषद् का सुप्रसिद्ध वचन —

*"अयं निजः परो वेति गणना लघुचेतसाम्।*
*उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्॥"*[37]

---

[32] India Ageing Report 2023, पूर्वोक्त — बहु-पीढ़ीय आवास एवं "इन-सिटु एजिंग" सम्बन्धी संस्तुतियाँ।

[33] World Health Organization, Active Ageing: A Policy Framework, Geneva, 2002; तथा Decade of Healthy Ageing 2021–2030.

[34] ईशोपनिषद्, 1.

[35] मनुस्मृति, 6.46.

[36] ऋग्वेद, 10.191.2.

[37] महोपनिषद्, 6.71–72.

## 9. तुलनात्मक दृष्टि

आश्रम व्यवस्था की प्रासंगिकता का एक स्वतन्त्र प्रमाण यह है कि आधुनिक मनोविज्ञान ने स्वतन्त्र रूप से समरूप निष्कर्ष निकाले हैं।

**एरिक एरिक्सन** का मनोसामाजिक विकास-सिद्धान्त जीवन को आठ चरणों में विभक्त करता है, जिनमें प्रौढ़ावस्था का संकट **"सर्जनात्मकता बनाम स्थगन" (generativity vs. stagnation)** तथा वृद्धावस्था का संकट **"अहं-अखण्डता बनाम निराशा" (ego integrity vs. despair)** है।[38] यह उल्लेखनीय है कि एरिक्सन ने स्वयं गांधी पर लिखे अपने अध्ययन में हिन्दू आश्रम-योजना की चर्चा की और उसे अपने जीवन-चक्र सिद्धान्त के समानान्तर पाया।[39] एरिक्सन की "generativity" और मनु के वानप्रस्थ-लक्षण *"दाता... सर्वभूतानुकम्पकः"* में अवधारणात्मक सामीप्य स्पष्ट है।

**सुधीर कक्कड़** ने भारतीय व्यक्तित्व-विकास के मनोविश्लेषणात्मक अध्ययन में आश्रमधर्म को भारतीय मानस की जीवन-चक्र-सम्बन्धी आधारभूत संरचना के रूप में विश्लेषित किया है।[40]

तथापि एक भेद रेखांकित करना आवश्यक है: **एरिक्सन का प्रतिमान वर्णनात्मक है — वह बताता है कि विकास कैसे होता है; आश्रम व्यवस्था आदेशात्मक है — वह बताती है कि जीवन कैसे जिया जाना चाहिए।** यही आश्रम व्यवस्था की विशिष्टता भी है और उसकी समस्या का स्रोत भी।

## 11. पुनर्व्याख्या के सूत्र: 'आश्रम-चेतना' का प्रतिमान

पूर्वोक्त विश्लेषण के आधार पर यह प्रस्तावित किया जा सकता है कि आश्रम व्यवस्था की समकालीन प्रासंगिकता उसके *संस्थागत अनुकरण* में नहीं, अपितु **"आश्रम-चेतना"** के रूप में उसकी पुनर्प्रतिष्ठा में है। इस प्रतिमान के मूल सूत्र निम्नलिखित हैं:

1. **जीवन का सचेत नियोजन** — जीवन को यादृच्छिक प्रवाह न मानकर उद्देश्यपूर्ण चरणों में देखना।
2. **प्रत्येक चरण की स्वायत्त गरिमा** — कोई भी आयु "प्रतीक्षा" या "अनुपयोगिता" की नहीं।
3. **दायित्व-पूर्वक मुक्ति** — व्यक्तिगत आकांक्षा से पूर्व सामाजिक ऋण का शोधन।
4. **क्रमिक अनासक्ति** — सत्ता एवं परिग्रह का स्वैच्छिक, नियोजित हस्तान्तरण।
5. **सार्वभौमिक उपलब्धता** — लिंग, वर्ण एवं वर्ग-निरपेक्ष रूप से सबके लिए खुला प्रतिमान।
6. **लचीलापन** — जाबालोपनिषद् के *"यदि वेतरथा"* की भावना के अनुरूप वैयक्तिक विविधता की स्वीकृति।

## 12. उपसंहार

प्रस्तुत अध्ययन के आधार पर निम्नलिखित निष्कर्ष प्रस्तुत किए जा सकते हैं:

**प्रथम,** आश्रम व्यवस्था अपने ऐतिहासिक विकास में स्वयं परिवर्तनशील रही है — धर्मसूत्रकालीन विकल्प-प्रणाली से स्मृतिकालीन क्रम-प्रणाली तक। अतः उसकी पुनर्व्याख्या परम्परा-विरोधी नहीं, परम्परा-सम्मत है।

**द्वितीय,** इस व्यवस्था का स्थायी योगदान उसके *आयु-विभाजन* में नहीं, अपितु उस **दार्शनिक अन्तर्दृष्टि** में है कि जीवन के भिन्न प्रयोजन परस्पर-विरोधी नहीं, अपितु क्रमिक हैं — और उनका समन्वय ही स्वस्थ व्यक्तित्व एवं समरस समाज का आधार है।

**तृतीय,** समकालीन भारत की जनसांख्यिकीय वास्तविकता — विशेषतः तीव्र वृद्धावस्था-संक्रमण — वानप्रस्थाश्रम की अवधारणा को अभूतपूर्व रूप से प्रासंगिक बना देती है। वृद्धावस्था को "निर्भरता" से "प्रतिदान" के रूप में पुनर्परिभाषित करना इस व्यवस्था का सबसे मूल्यवान समकालीन अवदान हो सकता है।

[38] Erik H. Erikson, Childhood and Society, W. W. Norton, New York, 1950.

[39] Erik H. Erikson, Gandhi's Truth: On the Origins of Militant Nonviolence, W. W. Norton, New York, 1969.

[40] Sudhir Kakar, The Inner World: A Psycho-analytic Study of Childhood and Society in India, Oxford University Press, Delhi, 1978.

**चतुर्थ,** इस व्यवस्था की ऐतिहासिक सीमाओं — लैंगिक एवं वर्णगत विशिष्टता — को स्वीकार किए बिना उसकी प्रासंगिकता का दावा बौद्धिक रूप से अपूर्ण रहेगा। समावेशी पुनर्व्याख्या ही उसकी जीवन्तता की शर्त है।

**पञ्चम एवं अन्तिम,** आश्रम व्यवस्था हमें यह मूल शिक्षा देती है कि *मनुष्य केवल अपने लिए नहीं जीता* — वह ज्ञान-परम्परा, प्रकृति एवं पूर्वजों का ऋणी है, और उसका जीवन-क्रम इन ऋणों के शोधन की व्यवस्थित योजना है। एक ऐसे युग में, जहाँ व्यक्तिवाद और तात्कालिकता प्रमुख मूल्य बन चुके हैं, यह स्मरण स्वयं में क्रान्तिकारी है।

# सन्दर्भ-ग्रन्थ सूची

## (अ) मूल स्रोत


1. ऋग्वेद संहिता (सायणभाष्य सहित)।

2. तैत्तिरीय संहिता।

3. शतपथ ब्राह्मण।

4. ईशोपनिषद्, छान्दोग्य उपनिषद्, बृहदारण्यक उपनिषद्, तैत्तिरीय उपनिषद्, जाबालोपनिषद्, महोपनिषद् — गीता प्रेस, गोरखपुर संस्करण।

5. मनुस्मृति (कुल्लूकभट्ट-टीका सहित)।

6. आपस्तम्ब धर्मसूत्र, गौतम धर्मसूत्र, बौधायन धर्मसूत्र, वसिष्ठ धर्मसूत्र।

7. श्रीमद्भगवद्गीता (शांकरभाष्य सहित)।


## (ब) द्वितीयक स्रोत


8. Kane, P. V. *History of Dharmaśāstra*, Vol. II, Part I. Poona: Bhandarkar Oriental Research Institute, 1941.

9. Olivelle, Patrick. *The Āśrama System: The History and Hermeneutics of a Religious Institution*. New York: Oxford University Press, 1993.

10. Radhakrishnan, S. *The Hindu View of Life*. London: George Allen & Unwin, 1927.

11. Prabhu, Pandharinath H. *Hindu Social Organization*. Bombay: Popular Prakashan, 1963.

12. Ghurye, G. S. *Indian Sadhus*. Bombay: Popular Prakashan, 1953.

13. Kakar, Sudhir. *The Inner World: A Psycho-analytic Study of Childhood and Society in India*. Delhi: Oxford University Press, 1978.

14. Erikson, Erik H. *Childhood and Society*. New York: W. W. Norton, 1950.

15. Erikson, Erik H. *Gandhi's Truth: On the Origins of Militant Nonviolence*. New York: W. W. Norton, 1969.

16. Aurobindo, Sri. *The Human Cycle*. Pondicherry: Sri Aurobindo Ashram.

17. उपाध्याय, बलदेव. *भारतीय दर्शन*. वाराणसी: शारदा मन्दिर।

18. दिनकर, रामधारी सिंह. *संस्कृति के चार अध्याय*. लोकभारती प्रकाशन।


## (स) प्रतिवेदन एवं सांख्यिकीय स्रोत


19. UNFPA India & IIPS. *India Ageing Report 2023: Caring for Our Elders — Institutional Responses*. New Delhi, 2023.

20. IIPS & MoHFW. *National Family Health Survey (NFHS-5), 2019–21*. Mumbai, 2022.

21. National Crime Records Bureau. *Accidental Deaths and Suicides in India (ADSI)*, विभिन्न वर्ष. New Delhi: Ministry of Home Affairs.

22. World Health Organization. *Active Ageing: A Policy Framework*. Geneva, 2002.